© 2015 IJSRSET | Volume 1 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

भर्तृहरि का वाक्यविषयक प्रतिभा-सिद्धान्त

डॉ० मधुमिता
A-21, बैंकमेन्स कॉलोनी,
चित्रगुप्तनगर, कंकरबाग,
पटना, बिहार, भारत

सारांश- वाक्य विज्ञान का यह विवाद अनादि और अनन्त है कि पदों से वाक्य तक की यात्रा हो या वाक्य से पदों पर उतरा जाए। व्यवहार स्थिति वाक्य को आधार मानती है जबकि शास्त्रीय स्थिति पद को आधार रूप में स्वीकार करेग॥ भर्तृहरि ने वाक्य का स्वरूप एकात्मक स्फोट, वाक्यार्थ का स्वरूप, प्रतिभात्मक एवं दोनों के संबंध को अध्यास माना है। यही उनका प्रतिपाद्य है।

प्रमुख शब्द- प्रतिभा, पद, वाक्य, स्वभाव, आचरण, अभ्यास, विशिष्टोपहिता, संसर्ग, वाक्यार्थ, संसृष्ट, निराकांक्ष।

दार्शनिक दृष्टिकोण से वाक्य-विज्ञान का लक्ष्य वाक्य-निर्माण से अधिक वाक्यार्थ का बोध ही है। वाक्यपदीय (1.24) की हरिवृत्ति (स्वोपज्ञ) में संग्रहकार के नाम से एक कारिकार्ध दिया गया है –

पदानां रूपमर्थो वा वाक्यार्थादेव जायते।

अर्थात् पदों के स्वरूप या अर्थ की उत्पत्ति वाक्यार्थ पर ही आश्रित भाष्यकार पतंजलि ने पदों के सामान्य रूप की विशेषार्थ में परिणति को वाक्यार्थ कहा है (पदानां सामान्ये वर्तमानानां यद् विशेषेऽवस्थानं स वाक्यार्थः)।[1] में मीमांसकों की वाक्यार्थ-व्यवस्था (कि जातिरूप पदार्थ वाक्य में जाकर व्यक्तिरूप विशेष अर्थ देने लगते हैं) की ध्वनि है, जिसमें अभिहितान्वयवाद के बीज प्रतीत होते हैं।[2] पतंजलि ने वाक्यार्थ के विषय में एक अन्य मत प्रस्तुत किया है – **यदत्राधिक्यं वाक्यार्थः सः।**[3] जो कुछ आधिक्य के रूप सामने आता है वह वाक्यार्थ है। प्रातिपदिकार्थों में क्रिया के योग से क्रियाकृत विशेष उत्पन्न हो जाते हैं, वही आधिक्य है, वही वाक्यार्थ है प्रातिपदिकार्थानां क्रियाकृतविशेषा उपजायन्ते, महाभाष्य 2.3.50)। भर्तृहरि ने भी कहा है-

संबन्धे सति यत् त्वन्यदाधिक्यमुपजायते।
वाक्यार्थमेव तं प्राहुरनेकपदसंश्रयम्॥ (वाक्यपदीय 2.42)

पद को सामान्यवृत्ति और वाक्य को विशेषवृत्ति मानने की बात पतञ्जलि द्वारा ही नहीं, मीमांसकों और वाक्यपदीय के टीकाकार हेलाराज द्वारा भी समर्थित हैं।[4]

वाक्यार्थ के सिद्धान्त

वाक्यपदीय के वाक्यकाण्ड में जिस प्रकार वाक्य के स्वरूप को लेकर मतभेद दिये गये हैं (वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायवादिनाम्), (1.2), उसी प्रकार वाक्यार्थ के विषय में भी विप्रतिपत्तियाँ हैं। पुण्यराज ने स्पष्ट किया है कि वाक्यार्थ के विषय में निम्नांकित छह विचार तो हैं ही [5]

(1) संसर्ग वाक्यार्थ है, (2) संसृष्ट वाक्यार्थ है, (3) निराकांक्ष पदार्थ वाक्यार्थ है, (4) प्रयोजन वाक्यार्थ है, (5) क्रिया वाक्यार्थ है और (6) प्रतिभा वाक्यार्थ है। मुख्य रूप से भर्तृहरि का अपना मत प्रतिभा के पक्ष में है किन्तु उसके समानान्तर पूर्वपीठिका के रूप में अन्य मतों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

(1) संसर्ग वाक्यार्थ है – पद-संघात को वाक्यार्थ माननेवाले आचार्य संसर्ग को वाक्यार्थ मानते हैं। वाक्यपदीय (2.42) का उपर्युक्त उद्धरण इसी का प्रतिपादन करता है। वाक्यार्थ का विशेष स्वरूप संसर्ग है। जो विद्वान् वर्ण या पद को सार्थक नहीं मानते, उनके मत में भी पद-समुदाय से विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है। इसका निर्देश इस कारिका में है

यथैवानर्थकैः वर्णैः विशिष्टोऽर्थोऽभिधीयते।

पदैरनर्थकैरेवं विशिष्टोऽर्थोऽभिधीयते ।। – वाक्यपदीय 2.416

पद चाहे अनर्थक हों या उपाय के रूप में सार्थक माने गए हों, सदा क्रम से उच्चरित होने पर एक विशेष अर्थ के जनक होते हैं। वह विशेष संसर्ग है (वाक्यपदीय 2.55) ।

(2) संसृष्ट वाक्यार्थ है जो आचार्य आद्यपद को एवं पृथक् साकांक्ष सर्वपद को वाक्य कहते हैं, उनकी दृष्टि में संसृष्ट वाक्यार्थ होता है। उपर्युक्त दोनों मतों में (संसर्गः वाक्यार्थः तथा संसृष्टः वाक्यार्थः) यह अन्तर है कि संसर्ग को वाक्यार्थ मानने पर वाक्यार्थ में पदार्थों से 'विशिष्टता या अधिकता' माननी होती है, जब कि संसृष्ट को वाक्यार्थ कहने से पदार्थों का 'परस्पर-भाव' ही वाक्यार्थ है। उसे इस रूप में रख सकते हैं-संसर्गपक्षे पदार्थानां वैशिष्ट्यं वाक्यार्थः, संसृष्टपक्षे विशिष्टाः पदार्थाः एव वाक्यार्थः। एक पद अपने अर्थ से पहले अनुगत होता है और दूसरे पदों से जुटता है। अतः पद पहले ही विशिष्ट हो गया रहता है। इसे पुण्यराज ने अन्विताभिधान का मत कहा है।[6] विशिष्ट रूप में ही पद पदान्तर के सन्निधान से श्रोता को अपना बोध कराता है।

(3) निराकांक्ष पदार्थ वाक्यार्थ है कुछ लोग मानते हैं कि निराकांक्ष किन्तु विशेष विश्रान्त पदार्थ ही वाक्यार्थ है। यह संसर्गवाद का ही एक पक्ष है। दोनों में भेद इतना ही है कि संसर्गवाद में पद परस्पर साकांक्ष होते हैं। जब कि इसमें वे निराकांक्ष माने जाते हैं। संसर्ग पक्ष में पदार्थ को वाक्यार्थ नहीं कहा जाता, जबकि यहाँ पदार्थ ही वाक्यार्थ हैं। वे (पदार्थ) विशेष विश्रान्त अवश्य हैं किन्तु उनका संबन्ध संसर्ग न होकर असत्त्वात्मक होता है, उसे सही-सही प्रकट नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्ष न होकर कार्य द्वारा वह अनुमेय है-

कार्यानुमेयः सम्बन्धो रूपं तस्य न दृश्यते।

असत्त्वभूतमत्यन्तम् अतस्तं प्रतिजानते।।[7]

(4) प्रयोजन वाक्यार्थ है- कहीं-कहीं पद को अभिधेय तथा वाक्य को प्रयोजन कहा गया है[8] इसी दृष्टि से प्रयोजन को वाक्यार्थ कहते हैं। इस मत को अभिहितान्वयवाद का ही एक पूर्वरूप समझा गया है। तात्पर्यार्थ और प्रयोजन समान होते हैं। इस मत की समीक्षा भर्तृहरि ने स्वयं कड़े शब्दों में की है। उनका कहना है कि यदि प्रयोजन को वाक्यार्थ माना जाए तो वाक्यों के बीच परस्पर सम्बन्ध दिखाना कठिन हो जाएगा (न सम्बन्धो वाक्यानामुपपद्यते)।[9] वाक्यों में संबन्ध अभिधेय द्वारा ही संभव है। यदि पद का अर्थ अभिधेय रहे और वाक्य का अर्थ अभिधेय न हो तो वाक्यों में परस्पर सम्बन्ध कठिन होगा। पुण्यराज ने इस प्रसंग में कहा है-

अभिधेयं च वाक्यानां नास्ति इति असंबन्धानि वाक्यानि प्राप्नुवन्ति।[10]

(5) क्रिया वाक्यार्थ है वाक्य का लक्षण आख्यात शब्द के रूप में जहाँ दिया गया है वहाँ वाक्यार्थ क्रियारूप होता है। क्रिया के संबन्ध के बिना वाक्यार्थ की प्रतीति नहीं होती। यह व्याकरण का मान्य सिद्धान्त है कि वाक्य में क्रिया की मुख्य भूमिका होती है। किन्तु केवल क्रिया को ही वाक्यार्थ कह देना एक संकट की स्थिति है। भर्तृहरि स्वयं कहते हैं

कि क्रिया साधनों को लेकर पूर्ण होती है। साध्य-साधन संबन्ध से वाक्य पूर्णता की उपलब्धि करता है। क्रिया, काल, कारक, वचन आदि से अनुगत होती है। भर्तृहरि इस मतवाद का विरोध नहीं कर सकते कि क्रिया अपने साधनों के साथ युक्त होकर वाक्यार्थ प्रदान करती है। फिर भी उनका अपना मत प्रतिभा के पक्ष में है जो व्याकरण दर्शन को उनका मुख्य योगदान है।

(6) प्रतिभा वाक्यार्थ है- वाक्यार्थ को अखण्ड अवयव-विहीन मानने वाले विद्वान् इस विषय में विवाद नहीं कर सकते कि प्रतिभा वाक्यार्थ है। यहाँ प्रश्न स्वभावत: उठता है कि वाक्यार्थ एक ही है तो उसके विषय में अनेक मत क्यों हुए? भर्तृहरि ने कहा है कि इसमें संदेह नहीं कि वाक्यार्थ एक है किन्तु उस विषय में पुरुषों की भावनाएँ अनेक हैं। अत: भावनाश्रित विकल्प भी होंगे ही। वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड में भर्तृहरि ने यह स्पष्ट कहा है कि वाक्यार्थ विकल्प-शून्य है तथापि मनुष्यों की शास्त्रीय बुद्धि अनेक भावनाओं पर जाती हैं-

अविकल्पेऽपि वाक्यार्थे विकल्पा भावनाश्रया:।

अत्राधिकरणे वादा: पूर्वेषां बहुधागता:।। (वाक्यपदीय 2.116)

यह अविकल्प भर्तृहरि की दृष्टि में प्रतिभा है। नव-नव उन्मेष करने वाली प्रज्ञा को प्रतिभा कहते हैं। नागेश ने इसका समर्थन करते हुए कहा है कि वाक्यार्थ प्रतिभा का ही विषय है। पदार्थों के विषय में मनुष्यों की प्रतिभा विभिन्न प्रकार की उत्पन्न होती है। किसी शब्द के सुनने पर श्रोता की प्रतिभा जाग उठती है और वही उसके लिए उस शब्द का अर्थ होता है। प्रत्येक की प्रतिभा समान नहीं होती अत: सबको उस शब्द से वैसा ही ज्ञान नहीं होता। वाक्यार्थ की अखण्डता का स्वरूप भी व्यक्ति की प्रतिभा पर ही आश्रित होता है।[11]

प्रतिभा का अनुभव सबको होता है भले ही इसे समझाना कठिन है। इसलिए इसे स्वसंवेदन-सिद्ध कहा जाता है।[12]

प्रतिभा के बल से पदार्थों में परस्पर संश्लेष होता है। ऐसा लगता है कि प्रतिभा ही सब विषयों का आकार ग्रहण करती है। प्रतिभा अंत:करण की वस्तु है उसे कभी-कभी लोग प्रमाण के रूप में भी मानते हैं। पुण्यराज ने वाक्यपदीय की एक कारिका में यह देखा प्रमाणत्वेन तां लोक: सर्व: समनुपश्यति।[13] तो उन्हें अभिज्ञानशाकुन्तल का यह प्रसंग स्मरण आया कि जब व्यक्ति को वस्तुओं के विषय में संदेह होने लगे तो आन्तरिक प्रवृत्ति को प्रमाण मानना चाहिए किन्तु इसके लिए सज्जनता की कसौटी पर खरा होना चाहिए -

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मन:।

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त:करणप्रवृत्तय:।।[14]

इस प्रकार सभी प्राणियों में आन्तरिक प्रवृत्ति प्रतिभा के रूप में होती है। इस सन्दर्भ में पण्डित रघुनाथ शर्मा कहते कि जैसे मधूक, यव, गुड़ आदि द्रव्यों के परिपाक से स्वाभाविक मद आदि की शक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं वैसे ही प्रतिभा वाले सभी प्राणियों में अपने-अपने नियत संस्कारों के कारण स्वाभाविक रूप से प्रतिभा रहती है।[15]

प्रतिभा जन्मान्तर के अभ्यास से आती है इस विषय को भर्तृहरि ने अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया है। वसन्त ऋतु में कोयल की ध्वनि को कौन विकृत कर सकता है? पक्षियों को घोंसला बनाना किसने सिखाया? मकड़ी को जाला बनाना कौन बताता है?

स्वरवृत्तिं विकुरुते मधौ पुंस्कोकिलस्य क:।

जन्त्वादय: कुलायादिकरणे केन शिक्षिता:।।[16]

इस प्रकार प्रतिभा सभी प्राणियों में स्वभावसिद्ध है जिसे आज मनोविज्ञान में मूल प्रवृत्ति (Instinct) तथा आन्तरिक ज्ञानवृत्ति (Intiution) कहते हैं, वह प्रतिभा का ही भेद है। प्रतिभा बिना यत्न के ही किसी में रहती है यद्यपि राजशेखर, क्षेमेन्द्र आदि आचार्यों ने विभिन्न ओषधियों के उपयोग से प्रतिभा के विकास की बात कही है। प्रतिभा का मूल

कारण शब्द ही है चाहे वह इस जन्म की प्रतिभा हो या पूर्वजन्मों की। इस प्रतिभा का विकास शब्द के बिना नहीं हो सकता।

प्रतिभा के भेद भर्तृहरि ने प्रतिभा को निमित्त भेद से छह प्रकार की माना है। इस विषय में उनकी यह कारिका प्रमाण रूप से दी जाती है

स्वभाव-चरणाभ्यासयोगादृष्टोपपादिताम्।

विशिष्टोपहितां चेति प्रतिभां षड्विधां विदुः।।[17]

अर्थात् स्वभाव, आचरण, अभ्यास, योग (योगाभ्यास, ध्यान, समाधि), अदृष्ट तथा विशेष के कारण यह प्रतिभा उद्‌बुद्ध होती है। ये प्रतिभा के निमित्त हैं। उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

(1) स्वाभाविकी प्रतिभा – पुण्यराज के अनुसार बंदर आदि में जो प्रतिभा देखी जाती है वह स्वाभाविक है। स्वाभाविक प्रतिभा संस्कार के रूप में अनादि अभ्यासवश अवस्थित रहती है। सत्ता के भाव–विकार के रूप में इसका विवर्तन होता है।

एक अन्य दृष्टि से स्वत: ज्ञान कराने वाली शक्ति ही स्वाभाविक प्रतिभा है। जिस प्रकार स्वप्न में बिना सुने शब्द का भी परिज्ञान होता है, वैसे ही ऋषियों को अपनी प्रज्ञा के बल से बिना किसी के बताए अनेक शास्त्र समझ में आने लगते हैं।

भर्तृहरि ने सम्बद्ध कारिका की स्वोपज्ञवृत्ति में कहा है कि स्वाभाविकी प्रतिभा का आधार सत्ता है। भावना के रूप में सभी प्रकार के ज्ञान सत्ता अथवा परा प्रवृत्ति में लीन रहते हैं। वह शब्दात्मा स्वरूप है। उक्त संस्कारों का उद्बोध स्वभावत: होता है। यही स्वाभाविकी प्रतिभा है। इसका दृष्टान्त भर्तृहरि ने ही दिया है कि जिस प्रकार सुषुप्तावस्था में ज्ञान की सत्ता होते हुए भी वह अप्रबुद्ध जैसा होता है किन्तु नींद टूट जाने पर वह स्वभावत: अभिव्यक्त हो उठता है। स्वाभाविकी प्रतिभा भी संस्कार रूप में सत्ता में पड़ी रहती है। भाव–विकार के रूप में सत्ता का जब विवर्त होता है तो वह भी उबुद्ध हो जाती है।[18]

(2) चरण-निमित्ता प्रतिभा– इस प्रतिभा की व्याख्या में जटिलता है। पुण्यराज ने इसकी व्याख्या नहीं की है। भर्तृहरि ने स्वोपज्ञवृत्ति में इतना अवश्य कहा है कि वसिष्ठ आदि ऋषियों में यह प्रतिभा थी। आचरण को ही संभवत: चरण कहा गया है। पं॰ रघुनाथ शर्मा ने चरण को सदाचार के अर्थ में लेकर स्पष्ट किया है कि शास्त्रविहित तपस्या, स्वाध्याय आदि करने से भी प्रतिभा प्रकट होती है।[19] अपने आचरण से भूत, भविष्यत्, वर्तमान के विषय में प्रकाश पाना ऐसी ही प्रतिभा है।

किसी–किसी व्यक्ति में अद्भुत शक्ति होती है कि गहन स्थल में छिपी वस्तु को भी वे बता देते हैं।[20] इसे हम आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार अन्तर्दृष्टि (Intuition) कह सकते हैं। किन्तु इसमें सदाचार एवं आध्यात्मिक जीवन का बहुत महत्त्व है। ऐसे व्यक्तियों की अपरिमित प्रतिभा निर्विवाद होती है।

(3) अभ्यास-निमित्ता प्रतिभा– निरन्तर एक ही काम करते रहने से

व्यक्ति में ऐसी प्रतिभा उत्पन्न होती है जिसमें कार्यकारण का लौकिक सम्बन्ध आपातत: प्रतीत नहीं होता । भर्तृहरि की स्वोपज्ञ वृत्ति में 'कूप तडागादि' कहा गया है जिससे विषय जटिल हो गया है। डा. रामसुरेश त्रिपाठी ने 'रूपतर्क' इत्यादि पाठ मानते हुए यह बताया है कि स्वर्णकार का पर्याय रूपतर्क है। वह सोने को देखते ही समझ लेता है कि इसमें कितना खरा, कितना खोटा है। उसे इसका अभ्यास है। किन्तु वह दूसरे को सीधा समझा नहीं सकता कि कैसे उसने खरा–खोटा का हिसाब लगाया। चिर अभ्यास के कारण जौहरी किसी रत्न की शुद्धता की पहचान कर लेता है

किन्तु अपनी पहचान के आधारों को वह समझा नहीं सकता।[21] भर्तृहरि ने इस दृष्टान्त का संकेत वाक्यपदीय के प्रथम काण्ड में दिया है।

परेषामसमाख्येयमभ्यासादेव जायते।

मणिरूप्यादि-विज्ञानं तद्विदां नानुमानिकम्।।[22]

पं॰ रघुनाथ शर्मा ने कूपतडाग को यथावत् मानते हुए उनमें खनक (खोदने वाले) का अध्याहार किया है। कुआँ या तालाब खोदने वाले अपने अभ्यास से जान लेते हैं कि किस स्थान पर पानी निकलेगा। इस प्रकार की अभ्यासजन्य प्रतिभा उन खनकों में होती है। स्थिति जो भी हो, प्रतिभा का एक कारण निरन्तर अनुभव या अभ्यास भी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे दैनिक अनुभवों में भी मिलता है।

(4) योग-निमित्ता प्रतिभा- योगियों में ऐसी शक्ति होती है जिससे वे मानवों के अभिप्रायों को तुरत समझ लेते हैं।[23] योगी सर्वज्ञ होता है। न्याय -दर्शन में अलौकिक सन्निकर्षों में एक योगज सन्निकर्ष भी है। बिना इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष के योगी दूरवर्ती पदार्थ को भी हाथ में रखे हुए सामान के समान जान लेता है। योगदर्शन के विभूति पाद में पतञ्जलि ने योगियों की विभूतियों का निरूपण किया है जो धारणा-ध्यान-समाधि के रूप में 'संयम' के बल पर अद्भुत चमत्कार दिखाते हैं। वहाँ प्रातिभ ज्ञान का भी निरूपण किया गया है।

(5) अदृष्ट-निमित्ता प्रतिभा - इसका उदाहरण भर्तृहरि ने राक्षस, पिशाच आदि की परावेश (दूसरे पर सवार होना) तथा अन्तर्धान शक्ति से दिया है। इन लोकोत्तर योनियों में अदृष्ट शक्ति देखी जाती है।

(6) विशिष्टोपहिता प्रतिभा- कभी-कभी कोई विशिष्ट व्यक्ति अपनी ज्ञान-राशि का संक्रमण दूसरे में कर देता है और वह दूसरा व्यक्ति भी उस ज्ञान का वाहक हो जाता है। भर्तृहरि ने इसका उदाहरण दिया है कि कृष्णद्वैपायन व्यास ने संजय में ऐसी शक्ति का संक्रमण कर दिया था जिससे संजय को दिव्य दृष्टि मिल गई थी।[24] इसका अन्य उदाहरण अपनी आख्यान-शैली में बाणभट्ट ने दिया है कि सरस्वती के पुत्र सारस्वत ने अपने चचेरे भाई वत्स को अपनी सारी विद्याएँ तत्काल दे दी थीं।[25]

अनेक भेदों वाली यह प्रतिभा वाक्य द्वारा प्रतिपाद्य है एवं सभी वाक्यों का अधिष्ठान भी वही है। व्याकरण शास्त्र के क्षेत्र से यह ऊपर की वस्तु है। व्याकरण के काल-क्रम आदि का नाश हो जाने पर भी शब्द के बीज उसमें अवस्थित रहते हैं। यही प्रतिभा वर्ण-पद-वाक्य के रूप में व्यक्त होती है। प्रतिभा के रूप में जो वाक्यार्थ की स्थिति है वह दार्शनिक भूमिका में वाक्यार्थ को ले जाता है।

समस्त शब्द-राशि प्रतिभा का ही कारण है (**अभ्यासात् प्रतिभाहेतुः शब्दः सर्वोऽपरैः स्मृतः**)।[26]

जब समस्त शब्द-राशि प्रतिभा-हेतुक है तो वाक्यार्थ भी प्रतिभा के रूप में ही है। प्रतिभा ही वाक्यार्थ-बोध कराती है। हेतु और हेतुमान् में अभेद की कल्पना से प्रतिभा को वाक्यार्थ का हेतु एवं स्वयं वाक्यार्थ कहा जा सकता है। वाक्य को अखण्ड अर्थात् अवयवरहित मानने के पक्ष में ही प्रतिभा का कार्यक्रम चलता है। वाक्य का ही विकास भर्तृहरि की दृष्टि में वाक्यार्थ है। इस दृष्टि से अखण्ड और नित्य वाक्य का विकास प्रतिभा के रूप में होता है। ऐसी ही स्थिति में भर्तृहरि प्रतिभा को वाक्यार्थ कहते समस्त शब्द-शास्त्र मनुष्य की प्रतिभा का प्रसार है। प्रतिभा शब्दतत्व को समझती है और उसे भाषादर्शन का रूप प्रदान करती है। भाषादर्शन का मूल तत्त्व वाक्य एवं वाक्यार्थ है। उसकी अन्तिम सीमा प्रतिभा के रूप में आक्रान्त होती है। इस प्रकार भर्तृहरि के वाक्यविज्ञान का परिणमन (Culmination) प्रतिभा सिद्धान्त में होता है जिसपर अन्य भाषा-दार्शनिकों की दृष्टि नहीं गई है। भर्तृहरि इस विषय में अनुपम दार्शनिक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. महाभाष्य 1.2.45
2. संस्कृत व्याकरण दर्शन (त्रिपाठी), पृ. 362
3. महाभाष्य 2.3.45
4. हेलाराज, वाक्यपदीय, गुणसमुद्देश, कारिका–1 की टीका वाक्यार्थश्च सामान्ये वर्तमानानां विशेषऽवस्थापकः संबन्धः।
5. पुण्यराज टीका, पृ. 12 तदेवं प्रतिभा, संसर्गः संसर्गवशान्निराकांक्षो विशेषावस्थितः पदार्थ एव, संसृष्ट एवार्थः, क्रिया, प्रयोजनं चेति षड् वाक्यार्थाः इहोपदर्शिताः। (वाक्यपदीय 2.2)।
6. वाक्यपदीय 2.411 पूर्वैरथैरनुगत...। पुण्यराज अनेन श्लोकेन अन्विता भिधानसमाश्रयणेन –संसृष्टं वाक्यार्थप्रदर्शन क्रियते।
7. वाक्यपदीय 2.46
8. वाक्यपदीय 2.113 अभिधेयः पदस्यार्थो वाक्यस्यार्थः प्रयोजनम्।
9. वाक्यपदीय 2.113 (उत्तरार्ध का अंश)।
10. उपरिवत् – पुण्यराज की व्याख्या ।
11. डा. कपिलदेव द्विवेदी अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृ. 346
12. संस्कृत व्याकरण दर्शन, पृ. 371
13. वाक्यपदीय – 2.147 (पूर्वार्ध)
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/21
15. वाक्यपदीय 2.148 की अम्बाकी व्याख्या, पृ. 226
16. वाक्यपदीय 2.149 (रघुनाथशर्मा संस्करण)
17. वाक्यपदीय 2.152
18. वाक्यपदीय 2.152 स्वोपज्ञ वृत्ति, रघुनाथशर्मा के संस्करण में पृ. 228
19. अम्बाकर्ती व्याख्या, पृ. 229, चरणमत्र सदाचारः। शास्त्रविहितं तपः स्वाध्यायादिकं वा।
20. संस्कृत व्याकरण दर्शन, पृ. 374
21. संस्कृत व्याकरण दर्शन, पृ. 374–75

22. वाक्यपदीय- 1.35

23. वाक्यपदीय 2.152 स्वोपज्ञ वृत्ति - योगिनामव्यभिचारेण पराभिप्रायज्ञानादिषु।

24. वाक्यपदीय- 2.152 की स्वोपज्ञ वृत्ति

काचिद्विशिष्टैरुपहिता। तद्यथा- सञ्जयादीनां कृष्णद्वैपायनादिभि:।

25. हर्षचरित, मोतीलाल बनारसीदास से प्रकाशित (1984) संस्करण, पृ. 66 - अथ सारस्वतो तस्मिन् सवयसि भ्रातरि प्रेयसि वत्से वाङ्मयं समस्तमेव सञ्चारयामास।

26. वाक्यपदीय 2.117 (पूर्वार्ध)